आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 6/अंक 2/जून 2026

Received: 15/06/2026; Accepted: 24/06/2026; Published: 28/06/2026

आदिवासी कवयित्रियों की कविताओं में मानवीय संवेदना

प्रतिभा प्रसाद

एसोसिएट प्रोफेसर

विभागाध्यक्ष ,कुल्टी कॉलेज कुल्टी

ई मेल – pratibhaprasad439@gmail.com

मोबाईल. न- 8250425011

प्रतिभा प्रसाद, आदिवासी कवयित्रियों की कविताओं में मानवीय संवेदना, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 6/अंक 2/जून 2026**,(229 -234)

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

https://doi.org/10.5281/zenodo.21442047

आदिवासी साहित्य आज के समकालीन परिवेश में नये सवालों के साथ मौजूद दिखता है। इसका कारण उसकी अस्मिता के खतरे में पड़ने की आशंका है। वह अपनी पहचान मिटता देख रहा है। इसके पीछे सभ्य मानव समुदाय की उनके प्रति उपेक्षा और तिरस्कार है। इक्कीसवीं सदी में उसकी पहचान मिटा देने की साजिश रची गयी, जिससे चोट खाए सजग लोगों ने अपनी पहचान बचाने की लड़ाई छेड़ दी। आदिवासियों से उनकी पहचान और नाम दोनों छीनकर उसे 'बनवासी' बना दिया गया। उनसे उनकी संस्कृति छीन लेने की चेष्टा चलायी गयी। "वन एवं आदिवासी एकदूसरे के पूरक हैं। वन आदिवासियों के लिए दाता-, त्राता एवं अभिरक्षक है। जहाँ से उन्हें फलफूल-, ईंधन, चारा, घर बनाने को लकड़ी, जीवनदायिनी जड़ीबूटियाँ - आदिप्राप्त होती हैं। वहीं उनके गहरे मनोभावों को पूर्ण संतोष मिलता है। अकाल के समय केवल वन ही आदिवासियों के पोषक रह जाते हैं। वनों में रहने के वे इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि उन्हें कहीं बाहर ले जाया

जाए, तो वह अपार कठिनाई अनुभव करते हैं।"1 इन्हीं षड्यंत्रों की प्रतिक्रिया स्वरूप पूरा आदिवासी समाज उठ खड़ा हुआ। कुछ ने इसका विरोध अपने सामर्थ्यबल से किया-, कुछ ने लेखन को माध्यम बनाकर अपना विरोध प्रदर्शित किया। यही कारण है कि रमणिका जी कहती हैं – "आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है। वह प्रकृति का सहयोगीसहअस्तित्व का- अभ्यस्त, ऊँचनीच-, भेदभाव व छलकपट से दूर है। वह - जमाखोरी या सम्पत्ति जुटाने की भावना से मुक्त है। वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है। उसके साहित्य में इन्हीं सब की अभिव्यक्ति है। जीव की समस्यायें और प्रकृति से लगाव उसके साहित्य का आधार है।"2

हिन्दी में आदिवासी लेखन की एक बड़ी ही समृद्ध और विशाल परम्परा दिखाई पड़ती है। आदिवासी लेखन ने अपने समुदाय की पीड़ा का जहाँ इजहार किया है वहीं विभिन्न विरोधों का प्रतिरोध भी किया है। वे अपने जीवन की वेदना स्वयं व्यक्त करने के पक्षधर दिखाई देते हैं। रमणिका गुप्ता के कथनानुसार दरअसल आदिवासी चेतना का लेखन जहाँ एक तरफ अपनी पीड़ा खुद कहने, अपने समाधान खुद ढूँढ़ने की चेष्टा है, वहीं आज वह प्रस्थापितों द्वारा अपनी संस्कृति को नष्ट करने, अपने संसाधनों पर कब्जा जमाने के षड्यंत्रों के बरक्स प्रतिरोध की चेतना सभी लैस है। यह आदिवासी साहित्य अपने संगठन की वजह से पिछले पाँच हजार वर्षों से जिंदा है। आज आदिवासी साहित्य 90 भाषों में लिखा जा रहा है। यहाँ तक कि यह लेखन हिन्दी में भी प्रचुर मात्रा में हो रहा है। इससे न केवल हिन्दी समृद्ध हुई (आदिवासी संस्कृति से) है, बल्कि आदिवासी जीवनशैली-, समानता, भाईचारा और आजादी के सूत्रों का हिन्दी पट्टी और हिंदी भाषी मानस ने भी कुछ हद तक ग्रहण किया है। ये हिन्दी भाषी मानस में दृष्टिकोण बदलाव लाने में काफी सहायक हो रहा है।"3 यही कारण है कि आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य माना जाता है। वह किसी भी प्रकार के छलकपट से दूर अपनी दुनिया में स्वतंत्र होकर जीना और रहना चाहता है किन्तु यदि उसके - अधिकार और संस्कृति पर वह हस्तक्षेप देखता है तो वह अन्याय का विरोधी तथा सामाजिक न्याय का पक्षधर बना रहना चाहता है। आज के आदिवासी साहित्य में हम जहाँ अपनी संस्कृति बचाने की छटपटाहट देखते हैं वहीं विभिन्न समस्याओं के प्रति भी उनकी सजग दृष्टि को भी देख सकते हैं।

आदिवासी लेखन की दिशा झारखंड आंदोलन का प्रतिपल है। आदिवासी साहित्य ने दुनिया में अपने प्रतिरोध को स्वर देने के लिए कलम को लेखनी बनायी किन्तु आदिवासियों में भी जो समुदाय सबसे पिछड़ा हुआ है वह है स्त्री समुदाय -; क्योंकि वर्ग चाहे जो भी हो, स्त्रियाँ सदा दोयम दर्जे की प्राणी होती है, जो अपनी बेदखली, प्रताड़ना के खिलाफ संघर्षरत होती है। वह प्रतिरोधक और विद्रोही संस्कृति के रूप में चित्रित होती है। साधारणतः आदिवासी समुदाय अंतर्मुखी और शर्मीले होते हैं। उसमें भी स्त्रियां अत्यन्त ही शांत, सौम्य तथा अंतर्मुखी होती हैं जो एक तरफ दो प्रकार की प्रताड़ना सहती हैं। पुरुष समाज का तथा दूसरी तरफ आदिवासी समुदाय का। स्त्री के जीवन का संघर्ष जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जीवनभर चलता रहता है। वह अपनी महत्ता और उपयोगिताएँ बदलती रहती हैं। उन्हें हमेशा दोयम दर्जे का समझा जाता है। हर समाज में स्त्री की यही दशा है। वह अपने अस्तित्व, अपनी अस्मिता के लिए सदा संघर्षरत दिखाई पड़ती

है। विभिन्न स्तरों पर उनकी लड़ाई के रूप अलगअलग हैं। इसमें भ-ी आदिवासी स्त्रियाँ जो समाज की मुख्यधारा से ही कटी हुई है। उनके समाज के अस्तित्व को ही नकारा जाता है। ऐसी परिस्थिति में आदिवासी स्त्री अपने तथा अपने पूरे वर्ग के लिए उठ खड़े होने का साहस जुटाती है। आदिवासी लेखन पर विचार करते हुए वंदना टेटे जी का कहना है – "वे निपट पारिवारिक स्तर पर श्रमरत हैं। परन्तु उनकी सोच का दायरा आदिवासी विश्व है। समुदाय में हो रहे तमाम परिवर्तन, संकट, समस्या को लेकर जो चिन्तित हैं वे जानती हैं बाहरी प्रभाव और हमला सिर्फ समुदाय नहीं झेलता, बच्चे और स्त्रियाँ उसके पहले निशाने पर होती हैं क्योंकि आदिवासी स्त्रियाँ ही पीठ पर भविष्य को बेतराती है।"4

आदिवासी पूरा समाज अपनेअपने स्तर पर लड़ाई लड़ता रहा। उन्होंने न सिर्फ लड़ाइयाँ लड़ीं - बल्कि सभ्य समाज को अपनी संस्कृति तथा सभ्यता से भी परिचित करवाया। उन्होंने अपनी उपयोगिता तथा आवश्यकता को जरूर ी करार दिया। आदिवासी कवियों में हम इस संस्कृति बोध का चित्रण पाते हैं किन्तु महिला लेखन क्षेत्र में आदिवासियों का दर्द और भी परिपूर्णता अर्जित करता है। स्त्री हाथों की कलछी छोड़कर तीरऐसे नाम हैं जो अपनी-कमान सँभाल लेती है। आज आदिवासी स्त्री कवियों में ऐसे- खास जगह एवं पहचान रखती हैं। यशोदा मुर्मू **'नारी'** और **'स्वाधीन भारत'** नामक कविता में कहती हैं – **"मर्दों की बनाई इस दुनिया में न झुके तू / तेरे भी जज़्बात है / तेरा भी वजूद है /, न हटे तू।"5** आदिवासी स्त्रियाँ अपने ही समय के पुरुषों से लड़ती दिखती है। इसके साथ ही 'स्वाधीन भारत में कहाँ है नारी का स्थान' में स्वाधीनता के असली स्वरूप को खोलकर रख देती है। औद्योगिकरण, विकासीकरण के फलस्वरूप स्त्री आज भी अपना स्थान ढूँढ़ रही है। इसमें आधुनिकता के नाम पर थोपी जा रही स्थितियों का वर्णन है। बाहरी और भीतरी द्वन्द्व को आदिवासियाँ स्त्रियाँ झेलती रहती हैं। वह कहती हैं – **"हम तो झुलस ही रहे थे / अंधविश्वास, कुसंस्कार और दहेज की आग में / कोई हमें बताएँ / बलात्कार के इस दर्द को कैसे सहें / बार-इसीलिए बार, बारकि स्वाधीन भारत में है कहाँ ना / अब तक मन में उठता है एक ही सवाल / बार-री का स्थान?"6** इसी प्रकार आदिवासी स्त्री अपनी कर्मठता, अपनी संवेदनशीलता को व्यक्त करती आगे बढ़ती है। **डॉफ्रांसिस्का कुजूर .** 'प्रश्न ही प्रश्न', 'हमें करना ही होगा', 'चिनगारी' जैसी कविता में आदिवासी स्त्री जीवन पर सवाल उठाती है। 'पहाड़ की बेटी' कविता में मानो वे अपने पहचान से पूरे भारतीय समाज को अवगत करवा रही हैं। बेटी के रूप में स्त्री के संघर्ष की मानो गाथा गाती है। **'रुपयों की जुगाड़' में जाती मीलों दूर बाजार बेचती हैं अपने सामानों / धक्कम धुड़ी गाली सहती / कभी पैदल कभी बस तो कभी रेल / पहा / को कौड़ी के मोलड़ की बेटी।"7** कुजूर जी कभी भाषा के लिए लड़ती हैं तो कभीकभी बेटियों के लिए-, कभीकभी प्रश्न करती है समाज और स्वयं से।-

इसी तरह जसिंता केरकेट्टा के यहाँ आदिवासी स्त्री लेखन भाव स्त्रीपुरुष-, आदिवासीगैर - आदिवासी, प्राचीनता, नवीनता उचित अनुचित के बीच के-द्वन्द्व को उभारता है। वे अपनी कविता में पुरुष सत्तात्मक समाज को चुनौती देती दिखती है। **'रिसता हुआ दर्द'** में स्त्री जीवन के संघर्ष को बड़ी खूबी के साथ

उद्धृत किया गया है। कैसे बच्चा माँ के संघर्षरत जीवन को देखता है और तीरकमान को सँभालने की - जिम्मेदारी स्वयं लेता है - **"मैं देख रहा हूँ हर दिन हाथों में उसके खुरपी और डलिया / पर / माँ जाती है / देखता हूँ दूर तक आदमियों का / भागता हुआ माँ के पीछे पगडंडी तक पहुँच / तीर और कमान है / की जगह गीली मि / बदहवास दौड़ता हुआ मैं / जाकर उस भीड़ में गुम हो जाती है माँ / झुंडट्टी में फँस जाता हूँ।"8** इसी प्रकार 'जामुनी रोको खुद को गिरने से' कविता में वे न सिर्फ स्त्री की दशा का बखान करती है बल्कि उन्हें संघर्ष करने के लिए भी प्रेरित करती है। वह जमुनी से कहती है - **"ओ जामुनी उठो पहचानो उनकी / /इन लम्बे व्याख्यानों के बाद / भूरी आँखों के नीचे-इन नीली / सफेद बालों के पीछे-इन काले / नीयत को रख लो बस इतना याद, तुम्हें बिना सोये चलना है मीलों अपने नंगे / अनजाने बीहड़ बियाबान जंगलों में / गढ़ते हैं नए रास्ते / पाँवों से बनाकर निशाँ, अपने वास्ते।"9** कवयित्री न सिर्फ अपने समाज की समस्याओं से अवगत करवाती है बल्कि सारे आततायियों का नाश करने के लिए अपने समुदाय को जगाती भी है। 'उठो, तुम्हारे सिरहाने है सूरज', 'मेरी औकात' जैसी कविता में उनके उद्बोधनात्मक स्वरूप के दर्शन होते हैं। **'ग्रेस कुजूर'** जी ने अपनी लेखनी के माध्यम से न सिर्फ आदिवासियों के दुःखों के उद्गार व्यक्त किए हैं बल्कि अपनी प्रिय जंगल, पहाड़ को भी याद किया है। जंगल के फूल, पत्ते, सुगंधी, उनकी संगीत, मछलियाँ, नदीतालाब-, तरकस, बाण, तीर आदि को यादकर स्त्री की क्षमता को प्रतिबिम्ब किया है। 'जनी शिकार' की परम्परा का उल्लेख कर स्त्री में सामर्थ्य एवं शक्ति के प्रदर्शन के साथ ही अपनी झारखंड भूमि के प्रति गहरी आस्था दिखाई है। वे अपनी मिट्टी के प्रति अनुपम आस्था को उजागर करती है। साथही आततायियों का जमकर - मुकाबला करने के लिए आदिवासी समाज को कलम का प्रयोग तीर की तरह करने को कहती हैं– **"वे लूटने लुटाने आए रह गया क्या शेष / धरती उजाड़ी जंगल उजड़े / हम गए परदेश /? / झाड़ियाँ हो गई कमान सब बिखेतीर देखना बाकी है कलम को तीर होने दो। /"10** कलम पर उनकी दृढ़ आस्था है। कहीं कलम को तीर बनाने की बात कहती है, तो कहीं उस कलम पर अपनी आस्था रखते हुए उसे मौसम बदलने का एक प्रबल कारण मानती हैं। वे कहती हैं - **"तेल की धार न देखो हाँ तुम्हारे / तुम्हारे लिए / देखो कलम की धार / कलम मौसम बदलेगी। / कलम मौसम बदलेगी / लिए"11** वंदना टेटे ने अपनी कविताओं में आदिवासियता को बचाए रखने का प्रयास किया है। इनकी रचनाएँ आदिवासी जीवन संघर्ष, पेड़, जंगल, पहाड़ के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दर्शाती हैं। वह जानती हैं कि हमारी अस्मिता खतरे में है। हमारे विरुद्ध सभ्य कहे जाने वाले तथाकथित लोग साजिश कर रहे हैं। इसका उन्हें पूर्णतः आभास है। वे लिखती हैं – **"रची जा रही है / हमारे / गहरी-साजिशें गहरी ही खात्मे के लिए बिछाए जा रहे हैं फन्दे। /"12** इसके अतिरिक्त 'डूबो के खिलाफ', 'डोल जतरा', 'पहाड़ की जिन्दगी' आदि उनकी उत्कृष्ट कृतियाँ आदिवासी समाज के संघर्षों को उभारती दिखाई देती हैं।

ज्योति लकड़ा का **'तुम्हारा डर'** सीधेसमाज तथा व्यवस्था को चुनौती देता दिखाई देता -सीधे समय- है और वह मानो सवाल करती है कि तुम्हें हम और हमारी विशाल एवं समृद्ध सभ्यता और संस्कृति से डर लगता है इसलिए तुम्हारे समुदाय द्वारा हमें बौना बनाकर रखने का षड्यंत्र रचा गया। वह पुरुष समाज के सामने सीधे सवाल दागती है और कहती है कि – **"तुम डरते हो मेरे स्त्रीत्व से इसलिए अब तक झूठ बोलते / कि तुम सृष्टिकर्ता हो। / रहे हो"13**

निर्मला पुतुल नामक कवयित्री स्त्री आदिवासी लेखकों में अग्रणी हैं। उनकी कविताओं में स्त्री जीवन तथा आदिवासी समाज के मर्म को उद्घाटित किया गया है। 'आखिर कब तक', 'इन दिनों', 'यहाँ दूरियाँ' जैसी महत्वपूर्ण कविताओं में पुतुल जी काफी मुखरित है। जहाँ वे आदिवासियों के जीवन मर्म पर विचार करती रहती हैं, वहीं स्त्री जीवन भी उनके लिए महत्वपूर्ण है। वे कहती हैं – **"कब तक हमारे हिस्से का समुद्र लील / कर बुझाते रहेंगे उनके हिस्से का / निर्दोष मासूमों की बलि / चढ़ाते रहेंगे / और / अपनी प्यास-अपनी / आखिर कब तक / अनाज छीन कर?"14**

इसी तरह **सरिता सिंह बड़ाइन** की कविता 'बेटी और नागफनी', 'घासवाली', 'आजी' जीवन जैसी कविताएँ स्त्री जीवन के सवालों को खोलकर रख देती हैं। **'घासवाली'** कविता में वे कहती हैं – **"उबलता लहू मैं घास / तिरस्कार से / उबल पड़ती है वह / एक सनसनीखेज खबर की तरह / दौड़ता उसकी शिराओं में / शब्द।:पर जुबान रहती नि / आक्रोशित आँखें कहतीं / बेचती हूँ बाबू देह नहीं"15** ऐसी ही अनगिनत कविताएँ स्त्री कवयित्रियों के जीवन और मर्म को चित्रित करती चलती हैं। स्त्रियों के जीवन की व्यथा को मानो आदिवासी स्त्री कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से खोलकर रख दिया है।

इतना ही नहीं, आदिवासी स्त्री कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में स्त्री जीवन के अनछुए पहलुओं को मानो स्वर प्रदान किया है। निंतिशा खलखो, सरस्वती गागराई, रोज केरकेट्टा, सुषमा असुर, दमयन्ती सिंकु आदि कवयित्रियों ने भी स्त्री आदिवासी कविता की रचना कर स्त्री जीवन को यथार्थ रूप में भारतीय समाज के सम्मुख लाने का प्रयास किया है। इसमें उद्धृत संवेदनशीलता हमें आदिवासी स्त्रियों के प्रति अतिसंवेदनशील बनाती हैं तथा उनके लिए कुछ करने के दायित्व बोध से भी उन्हें भर देती हैं।

संदर्भ सूची :

1. शाक्य, हरिश्चन्द्र आदिवासी और उनका साहित्य -, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, सं-.2016, भूमिका
2. संगुप्ता ., रमणिका – आदिवासी साहित्य यात्रा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं-.2008, पृ.-5
3. वही, पृ.-5

4. संटेटे ., वंदना, कवि मन जनी मन, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं-.2019, पृ.-12
5. वही, पृ.-175
6. वही, पृ.-179
7. वही, पृ.-98
8. वही, पृ.-226
9. वही, पृ.-215-216
10. वही, पृ.-83-84
11. वही, पृ.-243
12. वही, पृ.-197
13. सं गुप्ता रमणिका .– कलम को तीर होने दो, दिल्ली, सं.-2015, पृ.-212
14. वही, पृ.-212
15. वही, पृ.-300

****